श्रीराम कथा आयोजन

कथा व्यास, पं. डॉ. राम गोपाल तिवारी **'**मानस रत्न**'**, फोन **:** 9451142792

श्रीरामचरितमानस एक ऐसा दिव्य ग्रन्थ है, जिसमें व्यक्ति, समाज, देश और विश्व, सभी के लिए सभी परिस्थितियों के लिए सुखमय जीवन यापन करने के अनेक सूत्र उपलब्ध हैं, जिनके अनुसरण से इहलोक और परलोक दोनों सुधर सकते हैं। हम सभी 'राम राज्य' जैसे सुख–शांतिमय वातावरण की कल्पना करते हैं, पर यथार्थ में इसकी प्राप्ति हेतु हमें उन मानव–मूल्यों को चरितार्थ करना होगा जो इस दिव्य ग्रन्थ में वर्णित हैं। जन–जन में सर्वसुखाय–सर्वहिताय की भावना से इस ग्रन्थ में उल्लिखित सूत्रों के संचार हेतु समय समय पर 'श्रीरामकथा' का आयोजन परम आवश्यक है। इसी उद्देश्य से 'श्रीरामचरितमानस राष्ट्रीय समिति एवं गीता रामायण समिति, नोएडा के संयुक्त तत्वावधान में सप्त दिवसीय श्रीराम कथा का आयोजन श्रीराम मंदिर, सी ब्लॉक, सैक्टर 36, नोएडा में 10 से 16 दिसंबर 2019 को आयोजित हुआ। इस आयोजन में चित्रकूट धाम से पधारे मानस मर्मज्ञ पं. डॉ. रामगोपाल तिवारी ने श्रीरामचरितमानस के क्रमशः सातों सोपानों (काण्डों) की कथा सुनाई। इतने अल्प समय में यह तो संभव नहीं था कि सम्पूर्ण कथा को विस्तार से समझाया जाए, तथापि उन्होंने कुछ प्रसंगों का श्रवण कराते हुए जीवन में उपयोगी कुछ सूत्र दिये जो पाठकों के लाभार्थ अति संक्षिप्त रूप में यहाँ प्रस्तुत हैं –

1. बालकाण्ड :- इस काण्ड में अखिल ब्रह्माण्ड नायक भगवान श्रीराम के अवतरण (जन्म), उनकी बाल लीलाओं तथा विवाह तक की कथा है। श्रीराम के सगुण–साकार स्वरूप को समझना अति कठिन है जबकि निर्गुण–निराकार को सभी जानते हैं।

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ॥

(7 / 73 ख)

मुनि भरद्वाज के आश्रम में सगुण–साकार स्वरूप श्रीराम जी ने एक रात्रि विश्राम किया, उनके साथ सत्संग हुआ और चलते समय उन्हीं से सुगम पंथ पूँछा, किंतु वही भरद्वाज जी ऋषि याज्ञवल्क्य से प्रश्न करते हैं कि राम कौन हैं? यही प्रश्न सती जी और पार्वती जी के थे, पर कुछ अंतर था। सती और पार्वती दोनों के लिए मानस में भवानी शब्द का प्रयोग हुआ है, क्योंकि भवानी का अर्थ है भव (शिव) की अर्द्धांगिनी। सतीजी का प्रश्न है कि अखिल ब्रह्माण्ड नायक ब्रह्म मनुष्य रूप में अवतरित हो ही नहीं सकता यथा –

ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद॥

(1 / 50)

श्रीराम जी की महिमा प्रत्यक्ष देखने के पश्चात् सती जी को यह समझ में आ गया कि वह ब्रह्म मनुष्य रूप धारण करता है, इसीलिए पार्वती रूप में वे प्रश्न करतीं हैं कि ब्रह्म के अवतार लेने का क्या कारण है यथा –

प्रथम सो कारन कहहु बिचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी।।

(1 / 110 / 4)

शिव जी ने पार्वती जी को विस्तार से ब्रह्म के अवतार की कथा कही। भगवान श्रीराम ने मानव समाज में आदर्श, व्यवहार, मर्यादा, संस्कार एवं नैतिक समरसता के सामंजस्य–संतुलन को सुव्यवस्थित एवं सुस्थिर रखा। हमें मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के जीवन दर्शन को अपने आचरण में उतारना चाहिए। इस हेतु हमें श्रीराम के बारे में जानना अति आवश्यक है और श्रीराम को जानने के लिए श्रीराम कथा के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं है। **श्रीराम कथा परिवार से लेकर सम्पूर्ण विश्व के मानव समाज को सुखी, संतुलित एवं सुव्यवस्थित रखने की आचार संहिता है।**

2. अयोध्याकाण्ड :- श्रीराम वन–गमन, दशरथ जी का स्वर्गवास, भरत जी का चित्रकूट जाकर श्रीराम जी से उनकी चरण पादुकाएँ लाकर सिंहासनासीन कराने की कथा इस काण्ड में विस्तार से वर्णित है। जीवन में आचरणार्थ कुछ सूत्र इस प्रकार से हैं –

1. महाराज दशरथ ने विचार किया कि मेरी वृद्धावस्था आ गई है, अब राम को सिंहासन पर बिठा देना चाहिए। इसके बाद यह शरीर रहे या न रहे, फिर कोई चिंता नहीं।

पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ। जेहिं न होइ पाछें पछिताऊ।।

(2 / 4 / 5)

इस प्रसंग से हमें यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए कि जो महत्वपूर्ण कार्य हो, उसे यथाशीघ्र पूर्ण कर लें, क्योंकि इस क्षणभंगुर जीवन का कोई ठिकाना नहीं। जीवन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है स्वयं को जानना, ज्ञान, वैराग्य और भगवत् भक्ति, अतः इसी की प्राप्ति हेतु मानव का प्रथम प्रयास और लक्ष्य होना चाहिए।

2. श्रीराम जी, सीता जी और लक्ष्मण जी के साथ वनवास की अवधि में बारह वर्ष चित्रकूट में रहे। भरत जी सभी के साथ उनको वापिस अयोध्या लाने के प्रयास में जाते हैं, तब श्रीराम जी कहते हैं कि सभी ने मेरी विपत्ति को बाँटा है।

बाँटी बिपति सबहिं मोहि भाई। तुम्हहि अवधि भरि बड़ि कठिनाई।।

(2 / 306 / 6)

तात्पर्य यह है कि हमें आपसी सद्भाव से केवल संपत्ति का ही नहीं, बल्कि विपत्ति का भी बँटवारा करना चाहिए अर्थात् एक–दूसरे के सुख–दुख में साथ देना चाहिए।

3. अरण्यकाण्ड :- इस काण्ड में श्रीराम जी की चित्रकूट से पंचवटी की और पंचवटी से पंपापुर सरोवर तक की कथा है। पंचवटी निवास के समय श्री लक्ष्मण जी श्रीराम जी से प्रश्न करते हैं कि जीव, माया और ईश्वर में भेद क्या है? श्रीराम जी कहते हैं कि मैं संक्षिप्त में सम्पूर्ण तथ्य समझाऊँगा, पर तुम मन, बुद्धि और चित्त लगाकर सुनो, अतः जब कभी हम कथा श्रवण करें तब मन–बुद्धि–चित्त को कथा में ही लगाएँ तभी पूर्ण लाभ प्राप्त हो सकेगा। मन बड़ा चंचल है, पर अभ्यास से यह संभव है। माया एक पर्दे की तरह है जो जीव और ईश्वर के बीच में इस प्रकार से है, जैसे कि एक बर्तन में गेहूँ और चावल अलग–अलग रखने के लिए एक पार्टीसन लगाना पड़ता है और यदि उसे हटा दिया जाए तो गेहूँ–चावल मिल जाएँगे। इसी प्रकार यदि माया रूपी पर्दा हटा दिया जाए तो जीव ईश्वराकार हो जाता है। श्रीराम जी के पास शूर्पणखा सुंदर वेश धारण करके आती है, पर राम जी उससे बात करते हैं सीता जी की ओर देखकर और लक्ष्मण जी बात करते हैं श्रीराम जी की ओर देखकर –

सीतहि चितइ कही प्रभु बाता। अहइ कुआर मोर लघु भ्राता।।
गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी। प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी।।

(3 / 17 / 11–12)

श्रीराम जी ने भीलिनी शबरी की बाहिरी सुंदरता न देखकर निर्मल अन्तर्मन को पहचान कर कहा कि मैं जाति–कुल–धन–बल इत्यादि को अनदेखा करके हृदय की पवित्र भावना को देखता हूँ। मुझे भक्तिवंत ही प्रिय है। मैं केवल भक्ति का ही नाता मानता हूँ।

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता।।
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई।।
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा।।

(3 / 35 / 4–6)

4. किष्किंधाकाण्ड :- सीता जी की खोज करते हुए, शबरी द्वारा दिए गए संकेत के अनुसार श्रीराम–लक्ष्मण ऋष्यमूक पर्वत की ओर बढ़ते हैं। उस पर्वत पर बालि से त्रस्त सुग्रीव भयभीत अवस्था में रहता था। श्रीराम–लक्ष्मण को देखकर सशंकित हो पता लगाने के लिए श्री हनुमान जी को भेजा। उन्होंने श्रीराम जी को पहचान लिया और सुग्रीव से मित्रता करा दी। श्रीराम जी ने सच्चे मित्र के लक्षण बताए। मित्र ऐसा होना चाहिए जो अपने बड़े से बड़े दुख को भूलकर मित्र के हलके दुख को भी बहुत भारी समझकर उसके निवारणार्थ प्रयास करे।

निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना।।
जिन्ह कें असि मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई।।

(4 / 7 / 2–3)

श्रीरामचरितमानस में वर्णित श्रीराम जी के मानवीय आचरण के आदर्श एवं व्यवहार के अनुकरण से सम्पूर्ण मानव समाज सुख शान्ति के वातावरण का निर्माण कर सकता है। जब भाई–भाई के संबंध राम–भरत की तरह हो जाएँगे, तब ही राम–राज्य की स्थापना संभव है।

श्रीराम जी ने बालि का वध करके सुग्रीव का राजतिलक कर दिया और स्वयं वर्षाकाल में प्रवर्षण पर्वत पर निवास किया। सुग्रीव ने राम–काज बिसार दिया। इससे श्रीराम जी ने क्रोधित होकर कहा कि जिस बाण से मैंने बालि का वध किया था, उसी बाण से कल सुग्रीव को मारूँगा।

जेहिं सायक मारा मैं बाली। तेहिं सर हतौं मूढ़ कहँ काली।।

(4 / 18 / 5)

इससे श्रीराम जी ने यह संदेश दिया कि क्रोध आने पर भी उसकी प्रतिक्रिया को टाल देना चाहिए। श्री हनुमान जी ने सुग्रीव को राम–काज का स्मरण कराया और तब वानरों की चार टुकड़ियाँ चारों दिशाओं में सीता की खोज के लिए चल पड़ीं। श्रीराम जी ने सभी बंदरों से उनकी कुशलता पूँछकर यह शिक्षा दी कि सेना नायक को एक–एक सिपाही का ध्यान रखना चाहिए।

5. सुंदरकाण्ड :– दक्षिण दिशा की ओर गई वानर टुकड़ी के नायक बालिपुत्र अंगद थे। उनके साथ जाम्बवंत, हनुमान आदि थे। उन्हें संपाती से यह ज्ञात हुआ कि सीता जी रावण की अशोक वाटिका में अशोक वृक्ष के नीचे बैठी हैं। जब कोई भी वानर समुद्र पार जाने का साहस न जुटा सका, तब राम–काज हेतु जाम्बवंत जी ने श्री हनुमान जी को उनकी शक्ति का स्मरण कराया और वे लंका जाकर सीता जी का पता लगाकर लौट आए। श्रीरामजी ने उनसे पूँछा कि तुमने लंका कैसे जलाई, तब श्री हनुमान जी ने अभिमान रहित होकर कहा कि यह सब आपकी कृपा से संभव हुआ।

साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई।।
नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा।।
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई।।

(5 / 33 / 7–9)

हमें सभी कार्य कुशलता पूर्वक करने के पश्चात् भी अपने को कर्त्ता न मानकर कर्त्तापन के अभिमान से बचना चाहिए। यह श्री हनुमान जी का विशेष गुण है कि वे स्वयं द्वारा सम्पादित प्रत्येक कार्य को श्रीराम जी की कृपा ही समझते हैं। इसी का अभ्यास करके हम अपने जीवन में सुख, शान्ति और भक्ति प्राप्त कर सकते हैं। सीता जी का पता लग जाने पर श्रीराम जी वानर दल के साथ समुद्र तट पर पहुँच जाते हैं। वहाँ पर रावण का भाई विभीषण लंका से निष्कासन के बाद श्रीराम जी की शरण में आया और उनकी सलाह से श्रीराम जी ने सेना पार करने हेतु समुद्र से मार्ग माँगा और जब उसने राम की विनय अनसुनी कर दी, तब राम ने एक बाण से समुद्र सोखने का प्रयास किया, पर समुद्र ब्राह्मण वेश में आकर क्षमा याचना करते हुए पुल बनाने की विधि बताते हैं।

6. लंकाकाण्ड :- नल–नील से स्पर्श किए गए पत्थर श्रीराम जी की कृपा से पानी में तैरने लगते हैं और इस प्रकार लंका जाने के लिए चार दिन में पुल तैयार हो गया। जब श्रीराम जी उस पुल पर खड़े हुए तो उनके दर्शनार्थ सभी जलचर जड़वत हो गए, जिससे एक समानांतर पुल बन गया और जब वानरों द्वारा बनाए गए पुल पर भीड़ हो गई तब उस जलचरों के पुल से भी वानर जाने लगे।

सेतुबंध भइ भीर अति कपि नभ पंथ उड़ाहिं।
अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहिं जाहिं॥

(6/4)

श्री जाम्बवंत जी ने श्रीराम जी से प्रश्न किया कि जब जलचरों का पुल बन जाना था, तब व्यर्थ ही वानरों से पुल बनवाने का श्रम कराया गया। श्रीराम जी ने समझाया कि यदि हमने यह पुल न बनवाया होता तो मैं कहाँ खड़ा होता, अतः जब तक पुरुषार्थ के पुल का निर्माण नहीं होगा, परमार्थ का पुल नहीं बन सकेगा।

श्रीराम–रावण युद्ध हुआ और रावण का कुल सहित संहार हो गया, तब श्रीराम जी ने विभीषण का राज तिलक कर दिया। विभीषण ने कहा कि प्रभु कुछ समय यहाँ विश्राम कीजिए, तब श्रीराम जी ने कहा कि मुझे भरत की दशा स्मरण कर एक–एक पल युग की तरह लग रहा है। विभीषण ने पुष्पक विमान से अयोध्या जाने का प्रबंध कर दिया, पर श्रीराम जी ने हनुमान जी को अयोध्या भेजकर अपने आगमन की सूचना भरत जी को भेजी। श्रीरामचरितमानस में सदुपयोगी अनंत शिक्षाएँ उपलब्ध हैं। इस काण्ड में श्रीराम जी ने अजेय रावण पर विजय प्राप्त करके यह शिक्षा दी कि जीवन में किसी भी असाध्य समस्या की चुनौती का सामना करने के लिए मनुष्य के अंदर संस्कार, शिष्टाचार एवं सदाचार का बल ही सफलता दिला सकता है।

7. उत्तरकाण्ड :- चौदह वर्ष की अवधि में केवल एक दिन ही शेष रह जाने पर भरत जी अत्यंत अधीर होकर विचार करने लगे कि यदि अवधि बीत जाने पर भी इस शरीर में प्राण रहे तो मुझसे अधम और कोई नहीं हो सकता। इसी चिंता में लीन भरत जी के सम्मुख श्री हनुमान जी ने श्रीराम–सीता–लक्ष्मण के आने का समाचार दिया। भरत जी ने हनुमान जी को हृदय से लगा लिया। उन्हें ऐसा लगा मानो श्रीराम जी मिल गए हों, क्योंकि हनुमान जी के हृदय में श्रीराम जी सदैव निवास करते हैं।

कपि तव दरस सकल दुख बीते। मिले आजु मोहि राम पिरीते॥

(7/2/11)

श्रीराम जी ने एक कौतुक कर अपने अमित रूप धारण कर लिए और चौदह वर्षों की विरह वेदना से तप्त सभी नगरवासियों को एक साथ यथायोग्य मिलकर तृप्त कर दिया।

प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी॥
अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जोग मिले सबहि कृपाला॥

(7/6/4–5)

कुलगुरु वसिष्ठ जी ने दिव्य सिंहासन मंगाकर श्रीराम जी का राज्याभिषेक कर दिया। श्रीराम राज्य में सभी सुखी और सम्पन्न थे।

इस कलियुग में भी हम राम राज्य जैसे सर्वसुखमय मानव समाज की स्थापना कर सकते हैं। इसके लिए आवश्यकता है श्रीराम जी की तरह अपने आचरण व्यवहार में आपसी सौहार्द, प्रेम, विश्वास और परस्पर एक–दूसरे के प्रति दुख की घड़ी में सहयोग की भावना के संस्कार। भगवान राम के मानवीय आचरण–व्यवहार के अनुसार **अपने परिवार और समाज में अपने से वरिष्ठ-बुजुर्ग-गुरुजनों के प्रति सेवा और सम्मान की भावना एवं अपने से छोटों के प्रति पोषण, संरक्षण युक्त व्यवहार करना चाहिए। राम राज्य की स्थापना की प्रथम सीढ़ी यही है।**

त्याग की प्रतियोगिता

भरत जी नंदिग्राम में रहते हैं, शत्रुघ्न जी उनके आदेश से राज्य संचालन करते हैं। भगवान को वनवास हुए तेरह वर्ष बीत गये। एक रात की बात है, कौशिल्या जी को सोते में अपने महल की छत पर किसी के चलने की आहट सुनाई दी। नींद खुल गई। पूछा कौन है? मालूम पड़ा श्रुतिकीर्ति हैं। नीचे बुलाया श्रुति, जो सबसे छोटी है, आई, चरणों में प्रणाम कर खड़ी रह गई। राजमाता ने पूछा, श्रुति! इतनी रात को अकेली छत पर क्या कर रही हो बिटिया? क्या नींद नहीं आ रही? शत्रुघ्न कहाँ है? श्रुति की आँखें भर आईं, माँ की छाती से चिपटी, गोद में सिमट गई, बोली- माँ! उन्हें तो देखे हुए तेरह वर्ष हो गए। उफ! कौशिल्या जी का कलेजा काँप गया। तुरंत आवाज लगी, सेवक दौड़े आये। आधी रात ही पालकी तैयार हुई, आज शत्रुघ्न की खोज होगी, माँ चली। आपको मालूम है शत्रुघ्न जी कहाँ मिले? अयोध्या के जिस दरवाजे के बाहर भरत जी नंदिग्राम में तपस्वी होकर रहते हैं, उसी दरवाजे के भीतर एक पत्थर की शिला है, उसी शिला पर अपनी बाँह का तकिया बनाकर लेटे मिले। माँ सिरहाने बैठ गई, बालों में हाथ फिराया तो शत्रुघ्न जी ने आँखें खोलीं, माँ! उठे चरणों में गिरे, माँ आपने क्यों कष्ट किया? मुझे बुलवा लिया होता। माँ ने कहा शत्रुघ्न यहाँ क्यों? शत्रुघ्न जी की रुलाई फूट पड़ी, बोले- माँ! भैया राम पिता जी की आज्ञा से वन चले गये। भैया लक्ष्मण भगवान के पीछे चले गये, भैया भरत नंदिग्राम में हैं, क्या ये महल, ये रथ, ये राजसी वस्त्र विधाता ने मेरे ही लिये बनाये हैं? कौशिल्या जी निरुत्तर रह गयीं। देखो ये राम कथा है, यहाँ त्याग की प्रतियोगिता चल रही है और सभी प्रथम हैं, कोई पीछे नहीं रहा।

मोह रोग की चिकित्सा

मानस मर्मज्ञ पं0 श्रीराम किंकर जी उपाध्याय (साभार : कल्याण, नवम्बर 2018)

काकभुशुण्डि जी रामकथा सुनाते हुए नारद के मोह का वर्णन करते हैं। मोह को यों समझें कि शरीर में जितने रोग होते हैं, उनके मूल में किसी न किसी प्रकार का कुपथ्य होता है। अधिकांशतः व्यक्ति यह जानता है कि मुझे यह भोजन नहीं करना चाहिए, इस समय ऐसा करने से मैं रोगग्रस्त हो जाऊँगा, पर जब व्यक्ति उस ज्ञान का अनादर कर, उसके प्रतिकूल आचरण करता है तो अस्वस्थ हो जाता है, तो जिस वृत्ति के कारण शरीर में रोग उत्पन्न होता है, वह कुपथ्य है। कुपथ्य को जानते हुए भी विपरीत आचरण करने की जो वृत्ति है, उसका नाम है मोह। रामायण में मोह को अज्ञान का प्रतीक या पर्यायवाची नहीं माना गया है। अज्ञान का अर्थ है न जानना, पर मोह में ज्ञान के होते हुए भी उसका तिरस्कार करना है। मोह को समझने के लिए नारद जी का प्रसंग लिया गया, क्योंकि नारद जी से अधिक जानने वाला, उनसे अधिक आध्यात्मिक सत्य को समझने वाला और कौन हो सकता था?

हम 'मानस' में पढ़ते हैं कि नारद जी हिमालय की पहाड़ियों में जाते हैं और जब वहाँ का वातावरण देखते हैं कि झरना झर रहा है, बड़ा सुन्दर सुशीतल वायु बह रहा है, चारों तरफ हरियाली है, तो उन्हें लगता है कि यह स्थान भगवान का ध्यान करने के लिये बड़ा अनुकूल है। वे वहाँ की एक गुहा में बैठकर ध्यान में तल्लीन हो जाते हैं।

इन्द्र को लगता है कि नारद निश्चय ही स्वर्ग पाने के लिये ही तपस्या कर रहे होंगे। इन्द्र के मन में भय उत्पन्न होता है कि कहीं ये मेरे स्वर्ग पर अधिकार प्राप्त करने के लिये तो तपस्या नहीं कर रहे हैं।

यहाँ पर गोस्वामी जी एक बड़े महत्व की मनोवैज्ञानिक बात बताते हैं। वैसे लगता तो यही है कि दुर्गुणों की ओर से व्यक्ति के जीवन में बाधा आती है, लेकिन कभी–कभी ऐसा भी दिखायी देता है कि दुर्गुण और सद्‌गुण मिलकर साधक के जीवन में बाधा की सृष्टि कर रहे हैं। नारद के जीवन में इसी दूसरे तथ्य की ओर संकेत किया गया है। नारद की तपस्या को भंग करने की वृत्ति किसी राक्षस या दैत्य के मन में नहीं आती, वह आती है इन्द्र के मन में और इन्द्र कौन हैं? सबसे बड़े पुण्यात्मा। सौ अश्वमेध यज्ञ करने वाला ही इंद्र का पद प्राप्त करता है। तो, ऐसा इन्द्र जो स्वयं सत्कर्म करने वाला है, जब दूसरे को सत्कर्म से विरत करने की चेष्टा करता है, तब यह बात बड़ी अटपटी–सी मालूम पड़ती है। पर यही समाज का सत्य है और जीवन का भी। अच्छे काम में बाधा केवल बुरे लोग ही नहीं डालते, कभी–कभी अच्छे लोग भी डालते हैं। यह तब होता है, जब उनके मन में ईर्ष्या उत्पन्न होती है कि कहीं वह मुझसे बढ़िया काम न कर दे। अच्छा कहलाने वाले ऐसे ईर्ष्यालु व्यक्ति भोग परायण होते हैं।

काम अप्सराओं को लेकर नारद के पास जाता है, पर उनके मन पर अप्सराओं के मोहक हाव–भाव, नृत्य आदि का रंचमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ता। वे शान्तभाव से बैठे रहते हैं। यह देख काम के मन में भय उत्पन्न होता है कि कहीं मुनि क्रोध करके मुझे भस्म न कर दें। नारद शान्त भाव से काम को देखते हैं। काम डर के मारे उनके चरणों में आ गिरता है और कहता है– 'महाराज! मैंने जो कुछ किया है, वह इन्द्र के कहने से किया है।' काम के कथन का अर्थ यही है कि यदि दण्ड देना हो तो इन्द्र को दीजियेगा, मुझे नहीं। यही व्यक्ति के जीवन की विडम्बना है कि अभी तक तो काम इन्द्र का सहयोगी बना हुआ था और जब अपने उद्यम में असफल हो गया, तब कहता है मैंने यह अपनी इच्छा से नहीं किया है। फिर भी नारद को क्रोध नहीं आया और उन्होंने मुस्कराकर काम से कहा– 'तुम इन्द्र से जाकर कह देना कि मेरे अन्तःकरण में स्वर्ग का कोई लोभ नहीं है, वह आनन्द से स्वर्ग के भोगों का भोग करे।' काम नारद के चरणों में प्रणाम करके चला गया, लेकिन एक विचित्र बात हो गयी। अभी नारद के जीवन में सद्विचारों की, सत्कर्मों की, साधना की इतनी बढ़िया खेती हुई थी, पर अब उसकी बगल में अहंकार की घास उग आयी और नारद उस घास को अनदेखा कर देते हैं, घास की पहचान नहीं कर पाते हैं। यही नारद की समस्या है। रोग कब होता है? जब रोगी कुपथ्य करता है। नारद ने सारी इन्द्रियों से तो कुपथ्य रोक दिया, पर एक इन्द्रिय से कुपथ्य हो गया।

भगवान नारद के इस अहंकार के आधार को ही नष्ट कर देना चाहते हैं। इसे प्रत्यक्ष कराने के लिये भगवान ने एक कौतुक किया। भगवान ने अपनी माया को प्रेरित किया। भगवान की वह माया वैकुण्ठ से भी अधिक सुन्दर विचित्र नगर की सृष्टि करती है।

नारद को वह नगर बड़ा आकर्षक प्रतीत होता है और वे उसे देखने के लिये आगे बढ़ जाते हैं। नगर के राजा शीलनिधि ने आकर उन्हें प्रणाम किया और अपनी कन्या को बुलवाया। कन्या का नाम है विश्वमोहिनी। राजा नारद जी से कहते हैं– 'हे नाथ! आप अपने हृदय में विचार कर इसके सब गुण–दोष कहिए।' कन्या अति सुन्दर थी। नारद जी उस पर मोहित हो गए। नारद जी ने उसके साथ विवाह करने की योजना बनायी। उसके पश्चात नारद जी के जीवन में सारे दुर्गुण काम, क्रोध, लोभ, मद और मात्सर्य दिखायी देने लगे।

भगवान ने मानो बता दिया कि नारद! तुम वृथा गर्व कर रहे हो कि तुमने काम को जीत लिया। देखो, तुम तो काम में इतने पागल हो रहे हो, जितना एक गृहस्थ भी नहीं होता। गृहस्थ कामी भी बनता है तो सुबह उठकर पूजा–पाठ तो कर ही लेता है, पर नारद की दशा ऐसी हो गयी है कि कहते हैं –

जप तप कछु न होइ तेहि काला। हे बिधि मिलइ कवन बिधि बाला।।

(1/131/8)

इस समय जप–तप से तो कुछ हो नहीं सकता, इस समय तो सुन्दर रूप की आवश्यकता है, जिसे देखकर राजकुमारी मुझ पर रीझ जाये और मेरे गले में वरमाला डाल दे। उस समय नारद जी ने भगवान से प्रार्थना की कि प्रभो! आप अपना रूप मुझे दे दीजिए और किसी प्रकार से मैं उस राजकन्या को नहीं पा

सकता। उन्होंने भगवान से प्रार्थना की –

जेहि बिधि नाथ होइ हित मोरा। करहु सो बेगि दास मैं तोरा॥

(1 / 132 / 7)

भगवान ने भी श्लेषात्मक शब्दों में आश्वासन दिया –

जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार॥

(1 / 132)

माया के वशीभूत नारद भगवान के कथन को समझ नहीं पाते हैं, क्योंकि उस समय उनकी बुद्धि स्वार्थ में रत थी। भगवान ने उनके कल्याण के लिये उनकी मुखाकृति हरि (बन्दर) के जैसी बना दी थी, परन्तु उनका अपमान न हो, इसलिये यह भी व्यवस्था कर दी थी कि वह रूप केवल उस मायामयी राजकन्या को ही दिखायी दे, अन्य सब लोग उन्हें नारद के रूप में ही देखें। इस प्रकार का वेश प्राप्त कर नारद जी स्वयंवर में आते हैं। वहाँ दो रुद्रगण भी हैं, जो उनके ही पास बैठते हैं। उनको भी भगवान की आगे की लीला में पात्र बनना है, अतः उन्हें भी नारद जी का मर्कट रूप दिखायी देता है, वे दोनों नारद जी पर व्यंग्य भी करते हैं, परन्तु माया के वशवर्ती नारद जी उसे समझ नहीं पाते हैं। स्वयंवर में राजकन्या जयमाला लेकर आती है, नारद जी का भयंकर रूप देखकर वह दूर से ही चली जाती है। उसी समय भगवान भी राजा के वेश में आते हैं और राजकन्या प्रसन्न मन से उनके गले में वरमाला डाल देती है।

उधर नृपवेशधारी भगवान के गले में वरमाला पड़ते ही नारद जी ऐसे व्याकुल हो जाते हैं, मानो गाँठ में बँधी हुई मणि छूटकर गिर गयी हो। उन्हें इस तरह व्याकुल देखकर शिवगणों ने मुस्कराकर कहा– जाकर दर्पण में अपना मुँह तो देखिए!

ऐसा कहकर वे दोनों तो भाग लिये, पर नारद जी ने जब जल में अपने मुख का प्रतिबिम्ब देखा तो उन्हें बड़ा क्रोध आया और उन्होंने उन शिवगणों को राक्षस होने का शाप दे दिया।

उसके बाद भी उनका क्रोध शान्त न हुआ और वे भगवान कमलापति के पास चल दिए। क्रोध के आवेश में उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि या तो मैं उन्हें शाप दूँगा या प्राण दे दूँगा। नारद जी थोड़ी ही दूर गए थे कि भगवान उस राजकन्या और लक्ष्मी जी के साथ रास्ते में ही मिल गये।

मुनि को देखकर भगवान ने स्वयं कहा – हे मुनि! व्याकुल होकर कहाँ चले?

भगवान के ये शब्द सुनते ही नारद जी के क्रोध का पारावार न रहा और उन्होंने कथ्य–अकथ्य भगवान को सब कुछ सुना दिया। उन्हें शाप तक दे डाला।

नारद को बड़ा गर्व था कि मुझे इन्द्र और काम पर क्रोध नहीं आया। पर भगवान ने उन्हें दिखा दिया कि तुम कितने गर्वीले हो। अरे! तुम मुझ पर क्रोध कर रहे हो, मुझे गाली दे रहे हो, मुझे शाप दे रहे हो।

तुम्हारा सारा अभिमान व्यर्थ है। नारद जब इस सत्य को समझ लेते हैं, भगवान उनके अलग–अलग विकारों को दूर करने के बदले विकारों के मूल में जो मोह की वृत्ति विद्यमान है, उसी को दूर कर देते हैं –

जब हरि माया दूरि निवारी। नहिं तहँ रमा न राजकुमारी।।

(1 / 138 / 1)

और जब विश्वमोहिनी नहीं रही –

जब तक माया थी, तब तक भगवान से झगड़ रहे थे। जब माया का लोप हो गया, मोह दूर हो गया, तो भगवान के चरणों में गिर पड़े और कहने लगे –

मृषा होउ मम श्राप कृपाला। मम इच्छा कह दीनदयाला।।
मैं दुर्बचन कहे बहुतेरे। कह मुनि पाप मिटिहिं किमि मेरे।।

(1 / 138 / 3–4)

महाराज! मेरा पाप कैसे मिटे, यह बताइये। मुझसे जो दोष हुआ है, उसका प्रायश्चित्त क्या है? भगवान ने मुस्करा कर कहा – **'जपहु जाइ संकर सत नामा।'**

विष्णु भगवान अति विशेष कृपा करके जब नारदजी के सामने से अपनी माया का लोप कर देते हैं, तभी नारदजी का मोह नष्ट होता है। मोह के कारण ही नारदजी अन्य दुर्गुण रूपी रोग से ग्रस्त हो गए थे। हमारे जीवन में भी जितने दुर्गुण हैं, सब भगवान की माया के कारण ही हैं।

माया छाया के जैसी है। छाया दिखाई देती है, छाया को कोई पकड़ नहीं सकता। जो दीप के सम्मुख है, उसको छाया नहीं दिखती– उसके पीछे छाया रहती है। जो दीपक के सामने पीठ करता है, तब छाया आती है। जो भगवान के सम्मुख है, माया उसे नहीं दिखती है। भगवान को भूल जाये यही बड़ा पाप है।

सबसे बड़ा पाप कौन–सा है। शास्त्रों में लिखा है– ब्रह्महत्या महापाप है। ब्रह्म को मारने में 'ब्रह्म हत्या' होती है– अरे, ब्रह्म–विस्मरण। जो भगवान को भूल जाता है, उसके आगे माया आती है। भगवान को भूलना नहीं।

नारदजी विष्णु भगवान से पूछते हैं – 'महाराज! मेरा पाप कैसे मिटे, यह बताइये? मुझसे जो पाप हुआ है, उसका प्रायश्चित्त क्या है? भगवान बताते हैं कि तुम भगवान शंकर के नाम का जप करो। वैसे पाप छूटना बड़ा ही कठिन है। पाप प्रायः सभी लोग करते हैं। भगवान के नाम का जप करने से ही पाप छूटता है। भगवान हृदय में प्रकट हों और जिसको पाप करने से ही रोक लें, उसी का पाप छूटता है। हनुमान जी ने कभी पाप किया ही नहीं। इसका एक ही कारण है– 'श्रीहनुमान जी महाराज सतत रामनाम का जप करते हैं।'

जप से ही जीवन सुधरता है। आप बहुत दान दो, उससे बिगड़ा हुआ मन शुद्ध नहीं होगा। दान देने से पुण्य बढ़ता है। यज्ञ करने से, तीर्थयात्रा करने से पुण्य बढ़ेगा। जब पुण्य बढ़ता है, तब पुण्य का अभिमान बढ़ता है, किन्तु किए हुए पाप नष्ट नहीं होते। लोग दान देते हैं, यज्ञ करते हैं नाना प्रकार के पुण्य करते हैं,

अच्छा है। सबसे उत्तम तो यह है कि घर में शान्ति से बैठकर भगवान के नाम का जप करो। भगवान को भूलो नहीं।

गोस्वामी जी इस प्रसंग का नाम 'नारद–मोह' देते हैं। यह सार्थक नाम है। इसका तात्पर्य यह है कि दुर्गुणों के बीज व्यक्ति के अन्तःकरण में विद्यमान रहते हैं और समय पाकर वे अंकुरित हो उठते हैं। रामायण में यह दावा किया गया है कि बड़े से बड़ा व्यक्ति भी इसका अपवाद नहीं है, ऐसा कोई नहीं, जो कह सके कि उसके अन्तःकरण में दुर्गुणों के संस्कार नहीं हैं। यदि कोई ऐसा कहता है, तो वह अपने जाने हुए सत्य का तिरस्कार करता है और फलस्वरूप मन तथा शरीर की दृष्टि से अस्वस्थ हो उठता है।

तब बसिष्ट बहुबिधि समुझावा

प्रस्तुति : **हिमांशु, मदर टैरेसा पब्लिक स्कूल**, गिझौड़, सै0-53, नोएडा

(तृतीय पुरस्कार प्राप्त प्रस्तुति)

श्रीरामचरितमानस में हर समस्या का समाधान निहित है। आवश्यकता है केवल इसे खोजने की। आतंकवाद से मुक्ति पाने का समाधान भी इसमें निहित है। इसी पर विचार करते हैं– केवल हमारा देश ही नहीं, आज पूरा विश्व आतंकवाद की समस्या से जूझ रहा है। सभी राष्ट्र और उनके अंदर की राजनैतिक पार्टियाँ यदि आपसी मतभेद भुलाकर, निजी स्वार्थ से ऊपर उठकर इसका समाधान खोजें और उसे कार्यरूप में परिणत करें तो ऐसा कोई कारण नहीं कि इस जटिल समस्या से उबर न सकें। पठानकोट एयरबेस पर हुए आतंकवाद के हमले के संदर्भ में संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन का 'विटो' यह दर्शाता है कि आतंकवाद की समस्या के प्रति सबका नजरिया अलग–अलग है। ठीक ऐसी ही स्थिति रामायण काल में थी। गुरु वसिष्ठ में ब्रह्मा के नियम को तोड़ने तक की शक्ति थी। विश्वामित्र जी अपने तपोबल से दूसरी सृष्टि की रचना करने लगे थे। बहुत मुश्किल से माने। महाराजा दशरथ इन्द्र तक की सहायता करते थे। महाराजा जनक अपने तपोबल एवं ज्ञानबल से बहुत उच्च स्थिति में थे, पर इनमें आपसी तालमेल नहीं था। इसी कारण अयोध्या और मिथिला के बीच ताड़का, मारीच और सुबाहु का तथा दण्डकारण्य में खर–दूषण का एवं पूरे विश्व में रावण का आतंक छाया हुआ था। जब विश्वामित्र जी इस आतंकवाद से तंग आ गए तो वे महाराज दशरथ से राम–लक्ष्मण को मांगने गए, पर राजा दशरथ ने स्पष्ट रूप से मना कर दिया, किन्तु आपसी शत्रुता होते हुए भी राष्ट्रहित में गुरु वसिष्ठ जी ने महाराजा दशरथ को समझाया और वे राजी हो गए –

तब बसिष्ट बहुबिधि समुझावा। नृप संदेह नास कहँ पावा॥

(1/208/8)

रामायणकाल की इस उदारता–पूर्ण मिसाल से आज विश्व के राजनेताओं को आपसी मतभेद भुलाकर आतंकवाद का डटकर सामना करना चाहिए। आतंकवाद को जड़ से समाप्त करने का यही एकमात्र उपाय है।

मानस से सब कुछ मिलता

प्रस्तुति : **करण प्रताप सिंह, मदर टैरेसा पब्लिक स्कूल**, गिझौड़, सै0-53, नोएडा
साभार : तुलसी सौरभ, अगस्त-सितम्बर 2018 अंक

श्री मानस की राम कथा को शिव जी ने है गाया।
तुलसी जैसे सिद्ध संत से यह अमर ग्रन्थ लिखवाया।।

राम नाम की पावन सरिता श्रीराम कथा में बहती है।
जो इसमें स्नान, ध्यान करे उसकी तकदीर बदलती है।।

सुख-शान्ति से भरा सरोवर कभी नहीं है सूखता।
जगत का काम पूरा सब होता कोई कार्य नहीं है रुकता।।

पंडित, ज्ञानी, संत, भक्त जन सबका इससे नाता है।
सबको सब कुछ मिल जाता है जो चाहा वह पाता है।।

दीन-दुखी, निर्धन, बलहीन का मानस है एक सहारा।
मानस पढ़ते ही खुल जाता है भाग्यहीन का द्वारा।।

श्रद्धा, विश्वास का भाव रख मानस का ध्यान करो।
जग में आकर सुख के मोती लो, मन में कुण्ठा न धरो।।

'प्रेमी' जन सब मानस पढ़कर जग से सब कुछ पाये।
इस कलि में सब साधु, संत मिल धरा धाम पर मानस फैलाये।।

तुलसी मेरे तुलसीदल से सब के वचन पावन होते।
इस जग में मानस न होता तो भक्त कहाँ लगाते गोते।।

अगर न होते तुलसीदास

प्रस्तुति : **शीतल, सर्व हितकारी शिक्षा निकेतन**, निठारी, सै0-31, नोएडा
साभार : तुलसी सौरभ, अगस्त-सितम्बर 2018 अंक

संस्कृति की इति हो जाती अगर न होते तुलसीदास।
माता पिता गुरू की वाणी नहीं मानता कोई प्राणी।
मर्यादा की क्षति हो जाती अगर न होते तुलसीदास।।

कुशल न होता क्षेम न होता, भाई भाई में प्रेम न होता।
काम क्रोध में रति हो जाती, अगर न होते तुलसीदास।।

रावण कुम्भकर्ण बढ़ जाते, जब अधर्म के व्रण बढ़ जाते।
पाप पयोनिधि छिति हो जाती, अगर न होते तुलसीदास।।

जीवन में आदर्श न होता, समता का स्पर्श न होता।
मति हर एक कुमति हो जाती, अगर न होते तुलसीदास।।

मानवता का मान न होता, रामराज्य का भान न होता।
दृष्टि विहीन सुमति हो जाती, अगर न होते तुलसीदास।।

सद आचार विचार न होता, न्याय नीति सुविचार न होता।
सत्य स्वधर्म -विरति हो जाती अगर न होते तुलसीदास।।